



Major steps in political research.(M A 2nd semester)Anjani Kumar Ghosh, Political Science.

1 message

ANJANI GHOSH <anjanighosh51@gmail.com>
To: econtentofarts@gmail.com

Mon, Jul 20, 2020 at 8:35 AM

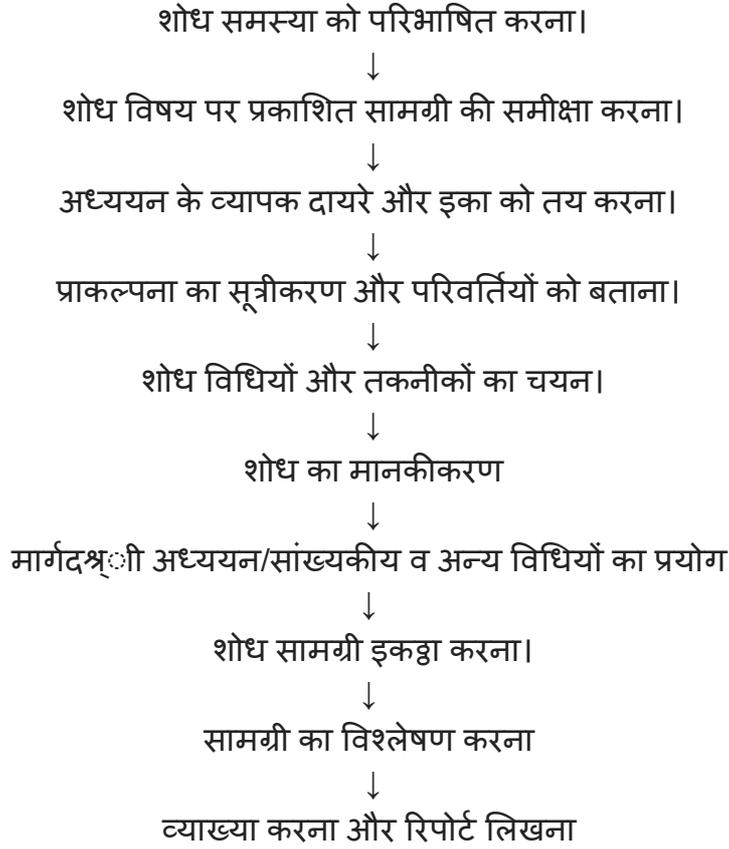
राजनीतिक शोध के मुख्य चरण -

राजनीतिक एवम सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य यह है कि इसमें समस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। अध्ययन के निष्कर्ष पर इस प्रकार पहुँचा जाता है कि उसके वैषयिकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता होती है। शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध सोपानों से गुजरती है। इन्हें सामाजिक शोध के चरण भी कहा जाता है। एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हुए अध्ययन को आगे बढ़ाया जाता है। सामाजिक शोध में कितने चरण होते हैं, इसमें विद्वानों में एकमत नहीं है नामकरण भी विद्वानों ने अलग-अलग तरह से किया है। शोध के बीच के कुछ चरण आगे-पीछे हो सकते हैं, उससे शोध की वैज्ञानिकता पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। हम यहाँ पहले कुछ विद्वानों द्वारा बताये चरणों का उल्लेख करेंगे, तत्पश्चात् सामाजिक शोध के महत्वपूर्ण चरणों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

स्लूटर ने सामाजिक शोध के पन्द्रह चरणों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं-

1. शोध विषय का चुनाव।
2. शोध समस्या को समझने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण।
3. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची का निर्माण।
4. समस्या को परिभाषित या निर्मित करना।
5. समस्या के तत्वों का विभेदीकरण और रूपरेखा निर्माण।
6. आँकड़ों या प्रमाणों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर समस्या के तत्वों का वर्गीकरण।
7. समस्या के तत्वों के आधार पर आँकड़ों या प्रमाणों का निर्धारण।
8. वांछित आँकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धता का अनुमान लगाना।
9. समस्या के समाधान की जाँच करना।
10. आँकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन।
11. आँकड़ों को विश्लेषण के लिए व्यवस्थित एवं नियमित करना।
12. आँकड़ों एवं प्रमाणों का विश्लेषण एवं विवेचन।
13. प्रस्तुतीकरण के लिए आँकड़ों को व्यवस्थित करना।
14. उद्धरणों, सन्दर्भों एवं पाद टिप्पणियों का चयन एवं प्रयोग।
15. शोध प्रस्तुतीकरण के स्वरूप और शैली को विकसित करना।

इग्निरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की पाठ्यपुस्तक (डैव् 002 शोध पद्धतियाँ और विधियाँ, 2006, पृ. 32) में सामाजिक शोध के चरणों को निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है।



राम आहूजा ने मात्र छः चरणों का उल्लेख किया है, जो कि निम्नवत् हैं-

1. अध्ययन समस्या का निर्धारण।
2. शोध प्रारूप तय करना।
3. निदर्शन की योजना बनाना (सम्भाव्यता या असम्भाव्यता अथवा दोनों)
4. आँकड़ा संकलन
5. आँकड़ा विश्लेषण (सम्पादन, संकेतन, प्रक्रियाकरण एवं सारणीयन)।
6. प्रतिवेदन तैयार करना।

सी. आर. कोठारी ने शोध प्रक्रिया के ग्यारह चरणों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् हैं-

1. शोध समस्या का निर्माण।
2. गहन साहित्य सर्वेक्षण
3. उपकल्पना का निर्माण
4. शोध प्रारूप निर्माण
5. निदर्शन प्रारूप निर्धारण
6. आँकड़ा संकलन
7. प्रोजेक्ट का सम्पादन
8. आँकड़ों का विश्लेषण
9. उपकल्पनाओं का परीक्षण।
10. सामान्यीकरण और विवेचन, और
11. रिपोर्ट तैयार करना या परिणामों का प्रस्तुतीकरण यानि निष्कर्षों का औपचारिक लेखन।

शोध के उपरोक्त विविध चरणों को हम निम्नांकित रूप से सीमित कर स्पष्ट कर सकते हैं।

प्रथम चरण-

शोध प्रक्रिया में सबसे पहला चरण समस्या का चुनाव या शोध विषय का निर्धारण होता है। यदि आपको किसी विषय पर शोध करना है तो स्वाभाविक है कि सर्वप्रथम आप यह तय करेंगे कि किस विषय पर कार्य किया जाये। विषय का निर्धारण करना तथा उसके सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पक्ष को स्पष्ट करना शोध का प्रथम चरण होता है। शोध विषय का चयन सरल कार्य नहीं होता है, इसलिए ऐसे विषय को चुना जाना चाहिए जो आपके समय और साधन की सीमा के अन्तर्गत हो तथा विषय न केवल आपकी रुचि का हो अपितु समसामयिक भी हो। इस तरह आपके द्वारा चयनित एक सामान्य विषय वैज्ञानिक खोज के लिए आपके द्वारा विशिष्ट शोध समस्या के रूप में निर्मित कर दिया जाता है। शोध विषय के निर्धारण और उसके प्रतिपादन की दो अवस्थाएँ होती हैं- प्रथमतः तो शोध समस्या को गहन एवं व्यापक रूप से समझना तथा द्वितीय उसे विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रकारान्तर में अर्थपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत करना।

अक्सर शोध छात्रों द्वारा यह प्रश्न किया जाता है कि किस विषय पर शोध करें। इसी तरह अक्सर शोध छात्रों से यह प्रश्न किया जाता है कि आपने चयनित विषय क्यों लिया। दोनों ही स्थितियों से यह स्पष्ट है कि शोध के विषय या अध्ययन का चुनाव महत्वपूर्ण चरण है, जिसका स्पष्टीकरण जरूरी है, लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं है। अनेकों शोध छात्र अपने शोध विषय के चयन का स्पष्टीकरण समुचित तरीके से नहीं दे पाते हैं। विद्वानों ने अपने शोध विषय के चयन के तर्कों पर काफी कुछ लिखा है। हम यहाँ उनके तर्कों को प्रस्तुत नहीं करेंगे अपितु मात्र बनाई के उस सुझाव का उल्लेख करना चाहेंगे जिसमें उसने शोधकर्ताओं को यह सुझाव दिया है कि वे स्वयं से निम्नांकित प्रश्न पूछें-

1. क्या आपको अपने शोध का विषय रुचिकर लगता है?
2. क्या आपके शोध विषय का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव है?
3. क्या आपके पास शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए पर्याप्त संसाधन है?
4. क्या शोध प्रश्नों को पूछने अथवा शोध की कुछ विधियों एवं तकनीकों के प्रयोग से आपके समक्ष किसी प्रकार की नीतिगत अथवा नैतिक समस्या तो नहीं आयेगी?
5. क्या आपके शोध का विषय सैद्धान्तिक रूप से महत्वपूर्ण और रोचक है?

निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों पर तार्किक तरीके से विचार करने पर उत्तम शोध समस्या का चयन सम्भव हो सकेगा।

द्वितीय चरण-

यह तय हो जाने के पश्चात् कि किस विषय पर शोध कार्य किया जायेगा, विषय से सम्बन्धित साहित्यों (अन्य शोध कार्यों) का सर्वेक्षण (अध्ययन) किया जाता है। इससे तात्पर्य यह है कि चयनित विषय से सम्बन्धित समस्त लिखित या अलिखित, प्रकाशित या अप्रकाशित सामग्री का गहन अध्ययन किया जाता है, ताकि चयनित विषय के सभी पक्षों की जानकारी प्राप्त हो सके। चयनित विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक साहित्य तथा आनुभविक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इस पर ही शोध की समस्या का वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रस्तुतीकरण निर्भर करता है। कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण शोध की समस्या के चयन के पूर्व होना चाहिए या पश्चात्। ऐसा कहा जाता है कि, 'शोध समस्या को

विद्यमान साहित्य के प्रारम्भिक अध्ययन से पूर्व ही चुन लेना बेहतर रहता है।' यहाँ यह भी प्रश्न उठ सकता है कि बिना 7 विषय के बारे में कुछ पढ़े कैसे अध्ययन समस्या का निर्धारण कर सकता है? विशेषकर तब जब आप यह अपेक्षा रखते हैं कि शोधकर्ता शोध के प्रथम चरण में ही अध्ययन की समस्या को निर्धारित निर्मित, एवं परिभाषित करे तथा उसके शोध प्रश्नों एवं उद्देश्यों को अभिव्यक्त करे। समस्या का चयन एवं उसका निर्धारण शोधकर्ता के व्यापक ज्ञान के आधार पर हो सकता है। तत्पश्चात् उसे उक्त विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक तथा विविध विद्वानों द्वारा किये गये आनुभविक अध्ययनों से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने से उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्बन्धित विषय पर किन-किन दृष्टियों से, किन-किन विद्वानों ने विचार किया है और विविध अध्ययनों के उद्देश्य, उपकल्पनाएं, कार्यविधि क्या-क्या रही है।" साथ ही साथ विविध विद्वानों के क्या निष्कर्ष रहे हैं। इतना ही नहीं उन विद्वानों द्वारा झेली गयी समस्याओं या उसके द्वारा भविष्य के अध्ययन किये जाने वाले सुझाये विषयों की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। ये समस्त ज्ञान एवं जानकारियाँ किसी भी शोधकर्ता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं।

तृतीय चरण-

सम्बन्धित समस्त सामग्रियों के अध्ययनों के उपरान्त शोधकर्ता अपने शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट अभिव्यक्त करता है कि उसके शोध के वास्तविक उद्देश्य क्या-क्या हैं ? शोध के स्पष्ट उद्देश्यों का होना किसी भी शोध की सफलता एवं गुणवत्तापूर्ण प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक है। उद्देश्यों की स्पष्टता अनिवार्य है। उद्देश्यों के आधार पर ही आगे कि प्रक्रिया निर्भर करती है, जैसे कि तथ्य संकलन की प्रविधि का चयन और उस प्रविधि द्वारा उद्देश्यों के ही अनुरूप तथ्यों के संकलन की रणनीति या प्रश्नों का निर्धारण। यह कहना उचित है कि, 'जब तक आपके पास शोध के उद्देश्यों का स्पष्ट अनुमान न होगा, शोध नहीं होगा और एकत्रित सामग्री में वांछित सुसंगति नहीं आएगी क्योंकि यह सम्भव है कि आपने विषय को देखा हो जिस स्थिति में हर परिप्रेक्ष्य भिन्न मुद्दों से जुड़ा होता है। उदाहरण के लिए, विकास पर समाजशास्त्रीय अध्ययन में अनेक शोध प्रश्न हो सकते हैं, जैसे विकास में महिलाओं की भूमिका, विकास में जाति एवं नातेदारी की भूमिका अथवा पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन पर विकास के समाजिक परिणाम।'

चतुर्थ चरण-

शोध के उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् अध्ययन की उपकल्पनाओं या प्राक्कल्पनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की जरूरत है। यह उल्लेखनीय है कि सभी प्रकार के शोध कार्यों में उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं, विशेषकर ऐसे शोध कार्यों में जिसमें विषय से सम्बन्धित पूर्व जानकारियाँ सप्रमाण उपलब्ध नहीं होती हैं। अतः यदि हमारा शोध कार्य अन्वेषणात्मक है तो हमें वहाँ उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों को रखना चाहिए। इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि उपकल्पनाओं का निर्माण हमेशा ही शोध प्रक्रिया का एक चरण नहीं होता है उसके स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण उस चरण के अन्तर्गत आता है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना से तात्पर्य क्या हैं? और इसकी शोध में क्या आवश्यकता है? इत्यादि प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

लुण्डबर्ग (1951:9) के अनुसार, "उपकल्पना एक सम्भावित सामान्यीकरण होता है, जिसकी वैद्यता की जाँच की जानी होती है। अपने प्रारम्भिक स्तरों पर उपकल्पना को भी अटकलपचू, अनुमान, काल्पनिक विचार या सहज ज्ञान या और कुछ हो सकता है जो क्रिया या अन्वेषण का आधार बनता है।"

गुड तथा स्केट्स के अनुसार, “एक उपकल्पना बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना या निष्कर्ष होती है जो अवलोकित तथ्यों या दशाओं को विश्लेषित करने के लिए निर्मित और अस्थायी रूप से अपनायी जाती है।”

गुडे तथा हॉट के शब्दों में कहा जाये तो, “यह (उपकल्पना) एक मान्यता है जिसकी वैद्यता निर्धारित करने के लिए उसकी जाँच की जा सकती है।” सरल एवं स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो, उपकल्पना शोध विषय के अन्तर्गत आने वाले विविध उद्देश्यों से सम्बन्धित एक काम चलाऊ अनुमान या निष्कर्ष है, जिसकी सत्यता की परीक्षा प्राप्त तथ्यों के आधार पर की जाती है। विषय से सम्बन्धित साहित्यों के अध्ययन के पश्चात् जब उत्तरदाता अपने अध्ययन विषय को पूर्णतः जान जाता है तो उसके मन में कुछ सम्भावित निष्कर्ष आने लगते हैं और वह अनुमान लगाता है कि अध्ययन में विविध मुद्दों के सन्दर्भ में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त इस-इस प्रकार के निष्कर्ष आएंगे। ये सम्भावित निष्कर्ष ही उपकल्पनाएँ होती हैं। वास्तविक तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त कभी-कभी ये गलत साबित होती हैं और कभी-कभी सही। उपकल्पनाओं का सत्य प्रमाणिक होना या असत्य सिद्ध हो जाना विशेष महत्व का नहीं होता है। इसलिए शोधकर्ता को अपनी उपकल्पनाओं के प्रति लगाव या मिथ्या झुकाव नहीं होना चाहिए अर्थात् उसे कभी भी ऐसा प्रयास नहीं करना चाहिए जिससे कि उसकी उपकल्पना सत्य प्रमाणित हो जाये। जो कुछ भी प्राथमिक तथ्यों से निष्कर्ष प्राप्त हों उसे ही हर हालात में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। वैज्ञानिकता के लिए वस्तुनिष्ठता प्रथम शर्त है इसे ध्यान में रखते हुए ही शोधकर्ता को शोध कार्य सम्पादित करना चाहिए। उपकल्पना शोधकर्ता को विषय से भटकने से बचाती है। इस तरह एक उपकल्पना का इस्तेमाल दृष्टिहीन खोज से रक्षा करता है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना स्पष्ट एवं सटीक होनी चाहिए। वह ऐसी होनी चाहिए जिसका प्राप्त तथ्यों से निर्धारित अवधि में अनुभवजन्य परीक्षण सम्भव हो। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि एक उपकल्पना और एक सामान्य कथन में अन्तर होता है। इस रूप में यदि देखा जाय तो कहा जा सकता है कि उपकल्पना में दो परिवर्त्यों में से किसी एक के निष्कर्षों को सम्भावित तथ्य में रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपकल्पना परिवर्त्यों के बीच सम्बन्धों के स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। सकारात्मक, नकारात्मक और शून्य, ये तीन सम्बन्ध परिवर्त्यों के मध्य माने जाते हैं। उपकल्पना परिवर्त्यों के सम्बन्धों को उद्घाटित करती है। उपकल्पना जो कि फलदायी अन्वेषण का अस्थायी केन्द्रीय विचार होती है, के निर्माण के चार स्रोतों का गुडे तथा हाट ने उल्लेख किया है- (i) सामान्य संस्कृति (ii) वैज्ञानिक सिद्धान्त (iii) सादृश्य (Anology) (iv) व्यक्तिगत अनुभव। इन्हीं चार स्रोतों से उपकल्पनाओं का उद्गम होता है। उपकल्पनाओं के बिना शोध अनिर्दिष्ट, एक दैव आनुभविक भटकाव होता है। उपकल्पना शोध में जितनी सहायक है, उतनी ही हानिकारक भी हो सकती है। इसलिए अपनी उपकल्पना पर जरूरत से ज्यादा विश्वास रखना या उसके प्रति पूर्वाग्रह रखना, उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना कदापि उचित नहीं है। ऐसा यदि शोधकर्ता करता है, तो उसके शोध में वैषयिकता समा जायेगी और वैज्ञानिकता का अन्त हो जायेगा।

पंचम चरण-

समग्र एवं निदर्शन निर्धारण शोध कार्य का पाँचवा चरण होता है। समग्र का तात्पर्य उन सबसे है, जिन पर शोध आधारित है या जिन पर शोध किया जा रहा है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी विश्वविद्यालय के छात्रों से सम्बन्धित किसी पक्ष पर शोध कार्य करने जा रहे हैं, तो उस विश्वविद्यालय के समस्त छात्र अध्ययन का समग्र होंगे। इसी तरह यदि हम सामाजिक-आर्थिक विकासों का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभाव का अध्ययन कर रहे हैं, तो चयनित ग्राम या ग्रामों की समस्त महिलाएँ अध्ययन सामग्री होगी। चूँकि किसी भी शोध कार्य में समय और साधनों की सीमा होती है और बहुत बड़े और लम्बी अवधि के शोध कार्य में सामाजिक तथ्यों के कभी-कभी नष्ट होने का भय भी रहता है, इसलिए सामान्यतः छोटे स्तर (माइक्रो) के शोध कार्य को वरीयता दी जाती है। इस

तथाकथित छोटे या लघु अध्ययन में भी सभी इकायों का अध्ययन सम्भव नहीं हो पाता है, इसलिए कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकायों का चयन वैज्ञानिक आधार पर कर लिया जाता है। इसी चुनी हुई कायों को निदर्शन कहते हैं। सम्पूर्ण अध्ययन इन्हीं निदर्शित इकायों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित होता है, जो सम्पूर्ण समग्र पर लागू होता है। यंग के शब्दों में कहा जाये तो कह सकते हैं कि, “एक सांख्यकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समग्र अथवा योग का एक अतिलघु चित्र या ‘क्रास सेक्शन’ है, जिससे निदर्शन लिया गया है।”

समग्र का निर्धारण ही यह तय कर देता है कि आनुभविक अध्ययन किन पर होगा। इसी स्तर पर न केवल अध्ययन इकायों का निर्धारण होता है, अपितु भौगोलिक क्षेत्र का भी निर्धारण होता है। और भी सरलतम रूप में कहा जाये तो इस स्तर में यह तय हो जाता है कि अध्ययन कहां (क्षेत्र) और किन पर(समग्र) होगा, साथ ही कितनों (निदर्शन) पर होगा।

उल्लेखनीय है कि अक्सर निदर्शन की आवश्यकता पड़ ही जाती है। ऐसी स्थिति में नमूने के तौर पर कुछ इकायों का चयन कर उनका अध्ययन कर लिया जाता है। ऐसे ‘नमूने’ हम दैनिक जीवन में भी प्रायः प्रयोग में लाते हैं। उदाहरण के लिए चावल खरीदने के लिए पूरे बोरे के चावलों को उलट-पलट कर नहीं देखा जाता है, अपितु कुछ ही चावल के दानों के आधार पर सम्पूर्ण बोरे के चावलों की गुणवत्ता को परख लिया जाता है। इसी तरह भगोने या कुकर में चावल पका है कि नहीं को ज्ञात करने के लिए कुकर के कुछ ही चावलों को उंगलियों मसलकर चावल के पकने या न पकने का निष्कर्ष निकाल लिया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि ये जो ‘कुछ ही चावल’ सम्पूर्ण चावल का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, यानि जिनके आधार पर हम उसकी गुणवत्ता या पकने का निष्कर्ष निकाल रहे हैं, निदर्शन (सैम्पल) ही है। गुडे और हाट का कहना है कि, “एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, किसी विशाल सम्पूर्ण का लघु प्रतिनिधि है।”

निदर्शन की मोटे तौर पर दो पद्धतियाँ मानी जाती हैं- एक को सम्भावनात्मक निदर्शन कहते हैं, और दूसरी को असम्भावनात्मक या सम्भावना-रहित निदर्शन। इन दोनों पद्धतियों के अन्तर्गत निदर्शन के अनेकों प्रकार प्रचलन में हैं। निदर्शन की जिस किसी भी पद्धति अथवा प्रकार का चयन किया जाये, उसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है, ताकि उचित निदर्शन प्राप्त हो सके। कभी-कभी निदर्शन की जरूरत नहीं पड़ती है। इसका मुख्य कारण समग्र का छोटा होना हो सकता है, या अन्य कारण भी हो सकते हैं जैसे सम्बन्धित समग्र का आँकड़ा अनुपलब्ध हो, उसके बारे में कुछ पता न हो इत्यादि। ऐसी परिस्थिति में सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन किया जाता है। ऐसा ही जनगणना कार्य में भी किया जाता है, इसीलिए इस विधि को ‘जनगणना’ या ‘संगणना’ विधि कहा जाता है, और इसमें समस्त इकायों का अध्ययन किया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि, सामाजिक शोध में हमेशा निदर्शन लिया ही जायेगा यह जरूरी नहीं होता है, कभी-कभी बिना निदर्शन प्राप्त किये ही ‘संगणना विधि’ द्वारा भी अध्ययन इकायों से प्राथमिक तथ्य संकलित कर लिये जाते हैं।

छठवाँ चरण-

प्राथमिक तथ्य संकलन का वास्तविक कार्य तब प्रारम्भ होता है, जब हम तथ्य संकलन की तकनीक/उपकरण, विधि इत्यादि निर्धारित कर लेते हैं। उपयुक्त और यथेष्ट तथ्य संकलन तभी संभव है जब हम अपने शोध की आवश्यकता, उत्तरदाताओं की विशेषता तथा उपयुक्त तकनीक एवं प्रविधियों, उपकरणों या मापकों इत्यादि का चयन करें। प्राथमिक तथ्य संकलन उत्तरदाताओं से सर्वेक्षण के आधार पर और प्रयोगात्मक पद्धति से हो सकता है। प्राथमिक तथ्य संकलन की अनेकों तकनीकें या उपकरण प्रचलन में हैं, जिनके प्रयोग द्वारा उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एवं तथ्य प्राप्त किये जाते हैं। ये उपकरण या तकनीकें मौखिक अथवा लिखित हो सकती

हैं, और इनके प्रयोग किये जाने के तरीकें अलग-अलग होते हैं। शोध की गुणवत्ता इन्हीं तकनीकों तथा इन तकनीकों के उचित तरीकें से प्रयोग किये जाने पर निर्भर करती है। उपकरणों या तकनीकों की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती हैं। शोधकर्त्ता शोध विषय की प्रकृति, उद्देश्यों, संसाधनों की उपलब्धता (धन और समय) तथा अन्य विचारणीय पक्षों पर व्यापक रूप से सोच-समझकर इनमें से किसी एक तकनीक (तथ्य एकत्र करने का तरीका) का सामान्यतः प्रयोग करता है। कुछ प्रमुख उपकरण या तकनीकें इस प्रकार हैं- प्रश्नावली, साक्षात्कार, साक्षात्कार अनुसूची, साक्षात्कार-मार्गदर्शिका (इन्टरव्यू गाइड) इत्यादि। विधि से तात्पर्य सामग्री विश्लेषण के साधनों से है। प्रायः तकनीक या उपकरण और विधियों को परिभाषित करने में भ्रामक स्थिति बनी रहती है। स्पष्टता के लिए यहाँ उल्लेखनीय है कि विधि उपकरणों या तकनीकों से अलग किन्तु अन्तर्सम्बद्ध वह तरीका है जिसके द्वारा हम एकत्रित सामग्री की व्याख्या करने के लिए सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों का प्रयोग करते हैं। शोध कार्य में प्रक्रियात्मक नियमों के साथ विभिन्न तकनीकों के सम्मिलन से शोध की विधि बनती है। इसके अन्तर्गत अवलोकन, केस-स्टडी, जीवन-वृत्त इत्यादि शोध की विधियाँ उल्लेखनीय हैं।

सप्तम चरण-

प्राथमिक तथ्य संकलन शोध का अगला चरण होता है। शोध के लिए प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु जब उपकरणों एवं प्रविधियों का निर्धारण हो जाता है, और उन उपकरणों एवं तकनीकों का अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप निर्माण हो जाता है, तो उसके पश्चात् क्षेत्र में जाकर वास्तविक तथ्य संकलन का अति महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ होता है। कभी-कभी उपकरणों या तकनीकों की उपयुक्तता जाँचने के लिए और उसके द्वारा तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ करने के पहले पूर्व-अध्ययन (पायलट स्टडी) द्वारा उनका पूर्व परीक्षण किया जाता है।

यदि कोई प्रश्न अनुपयुक्त पाया जाता है या कोई प्रश्न संलग्न करना होता है या और कुछ संशोधन की आवश्यकता पड़ती है तो उपकरण में आवश्यक संशोधन कर मुख्य तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है। सामान्यतः समाजशास्त्रीय शोध में प्राथमिक तथ्य संकलन को अति सरल एवं सामान्य कार्य मानने की भूल की जाती है। वास्तविकता यह है कि यह एक अत्यन्त दुरुह एवं महत्वपूर्ण कार्य होता है, तथा शोधकर्त्ता की पर्याप्त कुशलता ही वांछित तथ्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकती है। शोधकर्त्ता को यह प्रयास करना चाहिए कि उसका कार्य व्यवस्थित तरीके से निश्चित समयावधि में पूर्ण हो जाये। उल्लेखनीय है कि कभी-कभी उत्तरदाताओं से सम्पर्क करने की विकट समस्या उत्पन्न होती है और अक्सर उत्तरदाता सहयोग करने को तैयार भी नहीं होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पर्याप्त सुझ-बुझ तथा परिपक्वता की आवश्यकता पड़ती है। उत्तरदाताओं को विषय की गंभीरता को तथा उनके सहयोग के महत्व को समझाने की जरूरत पड़ती है। उत्तरदाताओं से झूठे वादे नहीं करने चाहिए और न उन्हें किसी प्रकार का प्रलोभन देना चाहिए। उत्तरदाताओं की सहूलियत के अनुसार ही उनसे सम्पर्क करने की नीति को अपनाना उचित होता है। यथासम्भव घनिष्ठता बढ़ाने के लिए (संदेह दूर करने एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए) प्रयास करना चाहिए। तथ्य संकलन अनौपचारिक माहौल में बेहतर होता है। कोशिश यह करनी चाहिए कि उस स्थान विशेष के किसी ऐसे प्रभावशाली, लोकप्रिय, समाजसेवी व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो जाये जिसकी सहायता से उत्तरदाताओं से न केवल सम्पर्क आसानी से हो जाता है। अपितु उनसे वांछित सूचनाएँ भी सही-सही प्राप्त हो जाती है।

यदि तथ्य संकलन का कार्य अवलोकन द्वारा या साक्षात्कार-अनुसूची, साक्षात्कार इत्यादि द्वारा हो रहा हो, तब तो क्षेत्र विशेष में जाने तथा उत्तरदाताओं से आमने-सामने की स्थिति में प्राथमिक सूचनाओं को प्राप्त करने की जरूरत पड़ती है। अन्यथा यदि प्रश्नावली का प्रयोग होना है, तो शोधकर्त्ता को सामान्यतः क्षेत्र में जाने की जरूरत नहीं पड़ती है। प्रश्नावली को डाक द्वारा और आजकल तो -मेल के द्वारा इस अनुरोध के साथ उत्तरदाताओं को

प्रेषित कर दिया जाता है कि वे यथाशीघ्र (या निर्धारित समयाविधि में) पूर्ण रूप से भरकर उसे वापस शोधकर्ता को भेज दें।

यदि शोध कार्य में क्षेत्र-अन्वेषक कार्यरत हों, तो वैसी स्थिति में उनको समुचित प्रशिक्षण तथा तथ्य संकलन के दौरान उनकी पर्याप्त निगरानी की आवश्यकता पड़ती है। प्रायः अन्वेषक प्राथमिक तथ्यों की महत्ता को समझ नहीं पाते हैं, इसलिए वे वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करने में विशेष प्रयास और रुचि नहीं लेते हैं। अक्सर तो वे मनगढ़न्त अनुसूची को भर भी देते हैं। इससे सम्पूर्ण शोधकार्य की गुणवत्ता प्रभावित न हो जाये, इसके लिए विशेष सावधानी तथा रणनीति आवश्यक है ताकि सभी अन्वेषक पूर्ण निष्ठा एवं मानदारी के साथ प्राथमिक तथ्यों का संकलन करें। तथ्य संकलन के दौरान आवश्यक उपकरणों जैसे टेपरिकार्डर, वायस रिकार्डर, कैमरा, विडियो कैमरा इत्यादि का भी प्रयोग किया जा सकता है। इनके प्रयोग के पूर्व उत्तरदाता की सहमति जरूरी है।

प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के साथ ही साथ एकत्रित सूचनाओं की जाँच एवं आवश्यक सम्पादन भी करते जाना चाहिए। भूलवश छूटे हुए प्रश्नों, अपूर्ण उत्तरों इत्यादि को यथासमय ठिक करवा लेना चाहिए। कोई नयी महत्वपूर्ण सूचना मिले तो उसे अवश्य नोट कर लेना चाहिए। तथ्यों का दूसरा स्रोत है द्वितीयक स्रोत है ,द्वितीयक स्रोत तथ्य संकलन के वे स्रोत होते हैं, जिनका विश्लेषण एवं निर्वचन दूसरे के द्वारा हो चुका होता है। अध्ययन की समस्या के निर्धारण के समय से ही द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है और रिपोर्ट लेखन के समय तक स्थान-स्थान पर इनका प्रयोग होता रहता है।

अष्टम चरण :-

आठवाँ चरण वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण अथवा रिपोर्ट लेखन का होता है। विविध उपकरणों या तकनीकों एवं प्रविधियों के माध्यम से एकत्रित समस्त गुणात्मक सामग्री को गणनात्मक रूप देने के लिए विविध वर्गों में रखा जाता है, आवश्यकतानुसार सम्पादित किया जाता है, तत्पश्चात् सारिणी में गणनात्मक स्वरूप (प्रतिशत सहित) देकर विश्लेषित किया जाता है। कुछ वर्षों पूर्व तक सम्पूर्ण एकत्रित सामग्री को अपने हाथों से बड़ी-बड़ी कागज की शीटों पर कोडिंग करके उतारा जाता था तथा स्वयं शोधकर्ता एक-एक केस या अनुसूची से सम्बन्धित तथ्य की गणना करते हुए सारणी बनाता था। आज कम्प्यूटर का शोध कार्य में व्यापक रूप से प्रचलन हो गया है। समाजवैज्ञानिक शोधों में कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से सभी प्रकार की सारणियाँ (सरल एवं जटिल) शीघ्रतिशीघ्र बनायी जाती हैं। एस.पी.एस.एस. (स्टैटिस्टिकल पैकेज फार सोशल साइंसेज) एक ऐसा ही प्रोग्राम है, जिसका प्रचलन तेजी से बढ़ा है। समाजवैज्ञानिक शोधों में एस.पी.एस.एस. द्वारा सारिणीयाँ बनायी जा रही हैं। विविध परिवर्त्यों में सह-सम्बन्ध तथा सांख्यिकीय परीक्षण इसके द्वारा अत्यन्त सरल हो गया है।

सारिणीयों के निर्मित हो जाने के पश्चात् उनका तार्किक विश्लेषण किया जाता है। तथ्यों में कार्य-कारण सम्बन्ध तथा सह-सम्बन्ध देखे जाते हैं। इसी चरण में उपकल्पनाओं की सत्यता की परीक्षा भी की जाती है। सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए समस्त शोध सामग्री को व्यवस्थित एवं तार्किक तरीके से विविध अध्यायों में रखकर विश्लेषित करते हुए शोध रिपोर्ट तैयार की जाती है।

अध्ययन के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची तथा प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रयुक्त की गयी तकनीक (अनुसूची या प्रश्नावली या स्केल इत्यादि) को संलग्न किया जाता है। सम्पूर्ण रिपोर्ट या प्रतिवेदन में स्थान-स्थान पर विषय भी आवश्यकता के अनुसार फोटोग्राफ, डाग्राम, ग्राफ, नक्शे, स्केल इत्यादि रखे जाते हैं।

उपरोक्त रिपोर्ट लेखन के सन्दर्भ में ही उल्लेखनीय है कि, शोध रिपोर्ट या प्रतिवेदन का जो कुछ भी उद्देश्य हो, उसे यथासम्भव स्पष्ट होना चाहिए। सेल्टिज तथा अन्य का कहना है कि, रिपोर्ट में शोधकर्ता को निम्नांकित बातें स्पष्ट करनी चाहिए-

1. समस्या की व्याख्या करें जिसे अध्ययनकर्ता सुलझाने की कोशिश कर रहा है।
2. शोध प्रक्रिया की विवेचना करें, जैसे निदर्शन कैसे लिया गया और तथ्यों के कौन से स्रोत प्रयोग किए गये हैं।
3. परिणामों की व्याख्या करें।
4. निष्कर्षों को सुझायें जो कि परिणामों पर आधारित हों। साथ ही ऐसे किसी भी प्रश्न का उल्लेख करें जो अनुत्तरीत रह गया हो और जो उसी क्षेत्र में और अधिक शोध की मांग कर रहा हो।

गेराल्ड आर लेस्ली तथा अन्य का कहना है कि, “समाजशास्त्रीय शोधों में विश्लेषण और व्याख्या अक्सर सांख्यिकीय नहीं होती। इसमें साहित्य और तार्किकता की आवश्यकता होती है। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान अतिक्लिष्ट सांख्यिकीय पद्धति का भी प्रयोग करने लगे हैं। प्रत्येक समाजशास्त्री समस्या के सर्वाधिक उपयुक्त तरीकों जो सर्वाधिक ज्ञान एवं समझ पैदा करने वाला होता है, के अनुरूप शोध और तथ्य संकलन तथा विश्लेषण को अपनाता है। उपागमों का प्रकार केवल अन्य समाजशास्त्रियों के शोध को स्वीकार करने तथा यह विश्वास करने के लिए कि यह क्षेत्र में योगदान देगा इच्छा के कारण सीमित होता है।”

अन्त में यह कहा जा सकता है कि, यद्यपि सभी शोधकर्ता समाजशास्त्रीय पद्धति के इन्हीं चरणों से गुजरते हैं। गेराल्ड आर. लेस्ली तथा अन्य का कहना है कि, “यह विविधता समाजशास्त्र को मजबूती प्रदान करती है और अपने द्वारा अध्ययन की जाने वाली समस्याओं के विस्तार को बढ़ाती है।”